दैनिक जागरण

Date:28-04-23

चुनौतियां बढ़ा रही बढ़ती आबादी

डा. एके वर्मा, (लेखक सेंटर फार द स्टडी आफ सोसायटी एंड पालिटिक्स के निदेशक एवं राजनीतिक विश्लेषक हैं)

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या प्रभाग के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार एक जुलाई 2023 तक चीन को पछाड़कर भारत विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जाएगा। उस समय तक भारत की जनसंख्या 142 करोड़ 86 लाख और चीन की जनसंख्या 142 करोड़ 56 लाख अनुमानित है। यह उपलब्धि है या चुनौती? चीन एक गैर-लोकतांत्रिक साम्यवादी देश है, जो नागरिकों की स्वतंत्रता और अधिकारों को कुचल कर इतनी बड़ी आबादी पर शासन करता है, मगर हमें तो लोकतांत्रिक शासन द्वारा इतनी बड़ी जनसंख्या का विकास और लोककल्याण करना है। इसके अलावा हमारी सांस्कृतिक, मजहबी, जातीय, भाषाई और क्षेत्रीय आदि विविधताएं हैं, जो संघीय व्यवस्था में चुनावों के दौरान अलगाववादी प्रवृत्तियों को बल देती हैं। इसके चलते विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा भिन्न-भिन्न राज्यों में विकास और लोक कल्याण के मुद्दों पर असहमति होती है। फिर सरकारों के निर्णयों पर न्यायपालिका पहरा देती है, जिससे जनसंख्या नियंत्रण, विकास एवं लोक कल्याण पर केंद्र और राज्य सरकारें निर्णय लेने के लिए चीन की तरह स्वतंत्र और निरंकुश नहीं।

विशाल जनसंख्या किसी देश का विपुल संसाधन है और गंभीर समस्या भी। सभी पार्टियों की सरकारों को इससे रूबरू होना पड़ेगा। चुनावी स्पर्धा के समय विभिन्न दल सरकारी नीतियों को राजनीतिक लाभ-हानि की दृष्टि से देखते हैं। जब जनसंख्या नियंत्रण की बात होती है तो अधिकांश दल उसे मुस्लिम-विरोधी कह देते हैं, क्योंकि उन्हें वे अपने 'वोट-बैंक' के रूप में प्रयोग करते हैं। चीन ने जनसंख्या नियंत्रण का सराहनीय काम अवश्य किया, जो 1980 में केवल 'एक बच्चा' पैदा करने का कानून बनाने के कारण संभव हुआ। यह कानून 2016 तक प्रभावी रहा। क्या ऐसा कोई कानून भारत में संभव है? यदि जनसंख्या नियंत्रण न हो सका तो इसका सबसे पहला शिकार भारतीय लोकतंत्र ही होगा। देश में मुस्लिम जनसंख्या पाकिस्तान के बराबर हो गई है। ऐसे में देखना होगा कि 2047 में बाह्य शक्तियों द्वारा प्रायोजित कहीं 1947 की पुनरावृत्ति न हो। लोकतंत्र में संख्या का महत्व है। यदि जनसंख्या असंतुलन इसी प्रकार बढ़ता रहा तो इसका चुनाव परिणामों पर गंभीर असर पड़ेगा।

स्वतंत्रता एवं अधिकारों की बड़ी गठरी लेकर चलने वाले लोकतांत्रिक समाज में जनसंख्या विस्फोट से अराजकता उत्पन्न हो सकती है। साथ ही भोजन, सुरक्षा, आवास, पेयजल, स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार आदि के लिए संघर्ष तेज हो सकता

है। यहां तक कि शासन में सैन्य-हस्तक्षेप की आशंका भी बढ़ सकती है। आज भी अनेक अवसरों पर सरकार को कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए अर्धसैनिक बलों और कुछ स्थितियों में सैन्य बलों का प्रयोग करना ही पड़ता है। इस प्रवृत्ति पर विराम लगाना होगा। यदि हमें लोकतंत्र को बचाना है तो जनसंख्या नियंत्रण तो करना ही पड़ेगा।

बढ़ती जनसंख्या अहम मानव संसाधन भी है। इसमें 68 प्रतिशत युवाओं और 48.5 प्रतिशत महिलाओं की भागीदारी संकेत करती है कि यदि उनका सदुपयोग किया जाए तो देश विकास की अभूतपूर्व ऊंचाइयां छू सकता है। इसके लिए शिक्षा और स्वास्थ्य में निवेश बढ़ाना होगा। नई शिक्षा नीति का उद्देश्य अच्छा है, मगर उसे जिस ढंग से लागू किया गया, उसने अध्ययन-अध्यापन को प्रभावित किया है। अब शिक्षा व्यवस्था मात्र परीक्षा केंद्रित बनकर रह गई है। असंख्य स्व-वित्तपोषित उच्च शिक्षण संस्थाओं के भारी भ्रष्टाचार के कारण 'बोगस' संस्थानों से निकले छात्र श्रेष्ठ शिक्षण संस्थाओं के छात्रों से ज्यादा अंक प्राप्त कर आगे निकल रहे हैं। क्या यह सब सरकार के संज्ञान में नहीं? शिक्षा व्यवस्था देश को ऐसी फसल दे रही है, जिसका दुष्परिणाम भावी पीढ़ियों को भुगतना पड़ेगा। यही बात स्वास्थ्य क्षेत्र में लागू होती है। यद्यपि सरकार ने 'आयुष्मान भारत' योजना में 10 करोड़ परिवारों को पांच लाख का वार्षिक स्वास्थ्य बीमा उपलब्ध कराया है। वहीं, कृषि में रसायनों के अतिशय प्रयोग से हर घर में बीमारियों ने पैर पसार दिए हैं। शिक्षा एवं स्वास्थ्य में अमीर और गरीब के लिए समानांतर व्यवस्थाएं पनप गई हैं, जो समाज को वर्ग संघर्ष में धकेल कर लोकतंत्र के लिए खतरा बन सकती हैं।

बेतहाशा बढ़ती आबादी रोजगार के लिए भी चुनौती है। किसी पार्टी के पास सबको रोजगार देने का कोई कल्पवृक्ष नहीं। स्वरोजगार ही कारगर विकल्प है, जिस पर सरकार गंभीरता से काम कर रही है। इसके बावजूद समस्या गंभीर है। इस कारण बेरोजगार युवा सामाजिक शांति एवं सुरक्षा के लिए संकट बन सकते हैं। लोकतंत्र में सत्ता-परिवर्तन होता रहता है। परस्पर दोषारोपण के बजाय सभी राजनीतिक दलों को मिलकर इस समस्या का समाधान खोजना चाहिए। यदि युवाओं को सही दिशा नहीं मिली, तो वे टेक्नोलाजी का प्रयोग कर अपनी मेधा को समाज विरोधी कार्यों में लगा सकते हैं। युवाओं को भी इस समस्या का समाधान ढूंढ़ना है। यह केवल सरकार की जिम्मेदारी नहीं। चीन ने इसका समाधान स्वरोजगार में ही तलाशा, लेकिन हमें तो स्वरोजगार के वर्तमान प्रयोगों के अतिरिक्त अन्य विकल्पों जैसे 'एक परिवार-एक रोजगार', शिक्षित युवाओं को बेरोजगारी भत्ता आदि पर भी विचार करना पड़ेगा। केंद्र सरकार की लगभग 700 जिलों में 'एक जिला-एक उत्पाद' की अप्रत्याशित सफलता के बाद हरियाणा और उत्तर प्रदेश की 'एक ब्लाक-एक उत्पाद' जैसी योजनाओं को पूरे देश में लागू कर स्वरोजगार के नए-नए रास्ते खोजने होंगे।

बढ़ती आबादी का दंश सबसे ज्यादा गांवों, छोटे कस्बों-शहरों और बड़े नगरों में देखने को मिलेगा। वहां रिहायशी और व्यावसायिक क्षेत्र में अनधिकृत अतिक्रमण पैदल चलने वालों के साथ यातायात एवं परिवहन को अभी ही बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। वहां आवास, बिजली, सड़क, हवा और पानी आदि पर समस्याएं उत्पन्न होंगी और संघर्ष बढ़ेंगे। उनसे निपटने के लिए स्थानीय सरकार को सक्रिय, सचेत एवं सशक्त करना होगा, ताकि लोक व्यवस्था दुरुस्त रहे और जनसंख्या विस्फोट लोकतांत्रिक व्यवस्था के चरमराने का कारण न बने।

दैनिक भास्कर

Date:28-04-23

समलैंगिक जोड़ों को कानूनी संरक्षण देना आवश्यक है

अमेरिका तक में 60 के दशक में इंटररेशियल मैरिज का समर्थन चुनावी नुकसान माना जाता था

डेरेक ओ ब्रायन, (लेखक सांसद और राज्यसभा में टीएमसी के नेता हैं)

मेरे सांसद बनने से भी पहले साल 2006 की बात है, जब मैंने एक याचिका पर हस्ताक्षर किए थे। इस याचिका में मांग की गई थी कि भारतीय दंड संहिता की धारा 377 को अपराध के दायरे से मुक्त किया जाए। उस दस्तावेज पर जिन सौ से भी ज्यादा गणमान्यजनों ने दस्तखत किए थे, उनमें झुम्पा लाहिड़ी, श्याम बेनेगल, विक्रम सेठ, कौशिक बसु आदि भी शामिल थे। 2018 में सर्वोच्च अदालत के पांच जजों की संवैधानिक पीठ ने वयस्कों के बीच सहमति से निर्मित समलैंगिक सम्बंधों को एकमत से अपराध के दायरे से मुक्त कर दिया।

विक्रम और आलोक की कहानी : पिछले सप्ताह जब सर्वोच्च अदालत में सेम-सेक्स मैरिज (या बेहतर हो अगर इसे कहें 'मैरिज इक्वेलिटी') पर सुनवाई चल रही थी, तब मैंने अपने और अपनी पत्नी तोनुका के अनेक समलैंगिक मित्रों से बात की। उनमें विक्रम डॉक्टर और उनके पार्टनर आलोक हिसारवाला भी शामिल थे। विक्रम पत्रकार हैं तो आलोक वकील। उन्होंने अपनी कहानी इन शब्दों में सुनाई : 'जब हम मिले, तब गे होना गैरकानूनी था और हम एक ऐसे भारत की कल्पना भी नहीं कर सकते थे, जिसमें हम खुलकर एक कपल की तरह जीते और हमारे परिवारों के द्वारा इसे पूरी तरह से स्वीकार किया जाता। आज 24 साल बाद हम गोवा में ठीक यही कर रहे हैं, और जहां यह बहुत कमाल है, वहीं यह बहुत नॉर्मल भी मालूम होता है। इसलिए हमें खुद को बार-बार यह याद दिलाना पड़ता है कि जब हमने शुरुआत की थी, तब हम कहां पर थे और आज हम कितने खुशनसीब हैं, जो इस मुकाम तक पहुंचे हैं। इस सबके दौरान शादी की सम्भावना तो दूर-दूर तक नहीं थी, इसलिए हम इसके बारे में कभी विचार तक नहीं करते थे। लेकिन यही बात आज के समलैंगिक जोड़ों पर लागू नहीं होती। आखिर किसी युवा समलैंगिक को इस मुकाम तक पहुंचने के लिए हमारी तरह 18 साल क्यों इंतजार करना पड़े? क्योंकि यह एक विशेषाधिकार नहीं है, यह सभी के लिए एक सामान्य अधिकार है और इसमें इच्छुक जोड़ों को विवाह करने का हक भी होना चाहिए।'

केवल अर्बन-एलीट्स के लिए नहीं : यह केवल शहरी कुलीनों का ही प्रश्न नहीं है। हकीकत इससे एकदम विपरीत है। लीला और उर्मिला की ही कहानी देख लीजिए। वे भोपाल में पदस्थ पुलिस कर्मचारी थीं, जिन्होंने 1987 में विवाह करने का निर्णय लिया। उन्हें तुरंत निलंबित कर दिया गया और 48 घंटों तक लॉकअप में रखा गया। समाज में एलजीबीटीक्यू लोगों को जिस तरह के पूर्वग्रहों और भेदभाव का सामना करना पड़ता है, यह उसकी एक बानगी है। आज भी इस समुदाय के जोड़ों के द्वारा आत्महत्या करने की खबरें नियमित रूप से आती रहती हैं। जेएनयू की प्रोफेसर निवेदिता मेनन जोड़ती हैं कि अंतर्जातीय, अंतर्धार्मिक शादियों के विरुद्ध हिंसा और समलैंगिकों के द्वारा की जाने वाली आत्महत्या की खबरें किन्हीं अलग इतिहासों का नहीं, बल्कि एक साझा इतिहास का हिस्सा हैं, जिसमें स्त्री-पुरुष के सम्बंध को अनिवार्य और विवाह की संस्था को उसका श्रेष्ठ प्रतिनिधि समझा जाता है। इसे बदलने के लिए सेम-सेक्स मैरिज के इच्छुक जोड़ों के लिए स्पेशल मैरिज एक्ट ऑफ 1954 में उपयोग किए जाने वाले शब्दों पति और पत्नी को बदलकर स्पाउस या जीवनसाथी करना एक अच्छा कदम होगा।

लेखक और मेरे गे-मित्र सिद्धार्थ दुबे ने समलैंगिकों और साधारण नागरिकों के अधिकारों के लिए बहुत लड़ाइयां लड़ी हैं। उन्होंने मुझसे कहा था कि मुझे निश्चित रूप से पता है कि भारत में सेम-सेक्स मैरिज के लिए जल्द ही कानून बनेगा, क्योंकि हमारे पास आज भी सच्चे न्यायाधीश हैं। वे न्याय की भावना को समझते हैं और कट्टता का विरोध करते हैं। लेकिन राजनीति इसके आड़े आती है। अमेरिका का ही उदाहरण ले लीजिए, जहां 1960 के दशक में इंटररेशियल मैरिज के समर्थन को चुनावी नुकसान समझा जाता था। तब अदालतों को हस्तक्षेप करना पड़ा और इंटररेशियल मैरिज से प्रतिबंध को हटाना पड़ा। यही स्थिति आज भारत में है। मेरी पत्नी तोनुका बंगाली हिंदू हैं और मैं एंग्लो-इंडियन रोमन कैथोलिक हूं। 2006 में हमारी शादी स्पेशल मैरिज एक्ट के तहत हुई थी। अगर वह कानून नहीं होता तो हमारे लिए विवाह कर पाना असम्भव था। वैसा ही कानूनी संरक्षण समलैंगिकों को भी मिले।

Date:28-04-23

जनसंख्या-वृद्धि को लेकर घबराने की जरूरत नहीं है

अगर दो समूहों की प्रजनन दर के अंतराल को पाटना है तो आर्थिक विकास करना होगा

नीरज कौशल, (कोलंबिया यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर)

संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक इस सप्ताहांत में भारत चीन को पीछे छोड़कर दुनिया का सबसे ज्यादा आबादी वाला देश बन चुका होगा। इसका कई लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत जनसंख्या-विस्फोट के दौर से गुजर रहा है और इस पर अंकुश लगाने की जरूरत है। लेकिन ऐसा मानने वाले भूल कर रहे हैं। भारत जनसंख्या-विस्फोट के दौर से नहीं गुजर रहा है। वास्तव में, आजादी के बाद से भारत में जनसंख्या-वृद्धि आज अपने सबसे न्यूनतम स्तर पर है। भारत की प्रजनन-दर प्रति-महिला 2.0 है। जनसांख्यिकी के जानकारों ने जिसे रिप्लेसमेंट लेवल माना है, जिस पर आकर जनसंख्या स्थिर हो जाती है, यह दर उससे कम है। रिप्लेसमेंट रेट को सामान्यतया प्रति-महिला 2.1 माना जाता है। पांच ही राज्यों की प्रजनन दर रिप्लेसमेंट लेवल से अधिक है और इनमें भी तीन ही बड़े हैं- बिहार, झारखंड और उत्तर प्रदेश। दो राज्य

छोटे हैं- मणिपुर और मेघालय। इनमें से भी चार ऐसे हैं, जो रिप्लेसमेंट लेवल से थोड़ा ही अधिक हैं और उनकी प्रजनन दर तेजी से घट रही है। भारत के सभी राज्यों में बिहार की प्रजनन दर सबसे अधिक 3 है, लेकिन उसमें भी गिरावट दर्ज की जा रही है। संक्षेप में, भारत को जनसंख्या-नियंत्रण के लिए कोई कदम उठाने की जरूरत नहीं है। कुछ दशकों में आबादी वृद्धि दर स्वत: स्थिर हो जाएगी और 2050 के बाद उसमें गिरावट आने लगेगी।

आज अनेक लोग देश की वर्तमान जनसांख्यिकी को अत्यंत खतरे की स्थिति की तरह देखते हैं। इनमें संघ प्रमुख मोहन भागवत और यूपी सीएम योगी आदित्यनाथ उल्लेखनीय हैं। वैसे अंदेशे न केवल निराधार हैं, बल्कि वे इतिहास का एक ऐसा दृष्टिकोण भी सामने रखते हैं, जो त्रुटिपूर्ण है। यह ऐसा दृष्टिकोण है, जो लोगों को खाने वाले मुंह के रूप में गिनता है। यानी जितने लोग होंगे, उतने लोगों को हमें खिलाना होगा। लेकिन इसका वैकल्पिक विचार यह है कि लोग इनोवेशन करने वाला दिमाग, उत्पादन करने वाले हाथ, सृजन करने वाली प्रतिभा और परवाह करने वाला दिल भी होते हैं। दूसरे शब्दों में लोगों को ह्यूमन कैपिटल की तरह देखा जा सकता है। ऐतिहासिक डाटा और शोध इस दूसरे नजरिए की पुष्टि करते हैं।

जनसंख्या वृद्धि को खतरे की घंटी की तरह देखने का एक साम्प्रदायिक कोण भी है। संघ प्रमुख जनसंख्या नियंत्रण के साथ ही जनसंख्या संतुलन की भी बात करते हैं। यहां पर कुछ तथ्यों को सामने रखा जा सकता है। पहली बात तो यह कि जहां मुस्लिमों की प्रजनन दर हिंदुओं से अधिक है, वहीं इन दोनों के बीच का अंतराल अब तेजी से घट रहा है। इसका यह मतलब है कि मुस्लिमों की प्रजनन दर हिंदुओं की प्रजनन दर की तुलना में अधिक तेजी से घट रही है। वर्ष 1992 में मुस्लिमों की प्रजनन दर हिंदुओं की प्रजनन दर की तुलना में प्रति-महिला एक शिशु अधिक की थी। लेकिन वर्ष 2021 में यह आंकड़ा एक के बजाय 0.4 तक पहुंच गया है।

दूसरी बात यह है कि भारत में प्रजनन दर को समझने की कुंजी देश के भूगोल और आर्थिक स्थिति में निहित है। इसकी तुलना में धर्म प्रजनन का एक कमजोर निर्धारक-तत्व है। मिसाल के तौर पर, जम्मू-कश्मीर, पश्चिम बंगाल और असम- इन तीन राज्यों में सघन मुस्लिम आबादी है, इसके बावजूद इन राज्यों में मुस्लिमों की प्रजनन दर बिहार और यूपी के हिंदुओं की तुलना में कम है। इसका कारण धार्मिक अंतर नहीं है। वास्तव में इसके मूल में भौगोलिक भेद है। तीसरे, देश के जिन पांच राज्यों या केंद्रशासित प्रदेशों में मुस्लिमों की सघन आबादी (20 प्रतिशत से अधिक) है, वहां प्रजनन दर रिप्लेसमेंट रेट से बहुत नीचे है, जिसका मतलब है कि इनमें से कुछ राज्यों की आबादी वास्तव में कम हो रही है। जम्मू-कश्मीर और लक्षद्वीप में यह 1.4 प्रति-महिला है, जो कि अत्यंत कम है। पश्चिम बंगाल में यह 1.6, केरल में 1.8 और असम में 1.9 प्रति-महिला है और ये सभी कम दरें हैं। चौथी बात यह कि हिंदुओं और मुस्लिमों की प्रजननशीलता में जो अंतर है, उसकी तुलना एक ही आर्थिक स्तर पर करने पर वह लगभग विलीन हो जाता है। इसका यह मतलब है कि अगर दोनों समूहों की प्रजनन दर के अंतराल को पाटना है तो इसके लिए आर्थिक विकास करना होगा- सबका विकास। जैसे ही आर्थिक समृद्धि के फल निम्न आय समूहों तक पहुंचेंगे और स्त्रियों की शैक्षिक दशा सुधरेगी, हिंदुओं और मुस्लिमों की प्रजनन दर का अंतर समाप्त हो जाएगा।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:28-04-23

नए विषय पर बहस तेज

संपादकीय

समलैंगिक विवाह पर सर्वोच्च न्यायालय में सुनवाई सबकी जिज्ञासा का केंद्र बनती जा रही है, तो आश्चर्य नहीं। इस अधिकार के लिए प्रयासरत समूह अपनी दलील को अभी नहीं, तो कभी नहीं के अंदाज में आगे बढ़ा रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने गुरुवार को गैर-विषमलैंगिक समूहों पर केंद्र सरकार की दलीलें सुनी हैं। सर्वोच्च न्यायालय में दायर 15 से ज्यादा याचिकाओं पर लगातार सुनवाई हो रही है और एक से बढ़कर एक पहलू सामने आ रहे हैं। वास्तव में, केंद्र सरकार ने शीर्ष अदालत से अनुरोध किया है कि समलैंगिक विवाह को कानूनी मंजूरी देने संबंधी विषय को संसद पर छोड़ दिया जाए। केंद्र की ओर से पेश सॉलिसिटर जनरल तुषार मेहता ने प्रधान न्यायाधीश डी वाई चंद्रचूड़ की अध्यक्षता वाली पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ को दोटूक बताया है कि शीर्ष न्यायालय एक बहुत जटिल विषय को देख रहा है और इसके बहुत गहरे सामाजिक प्रभाव पड़ेंगे। ऐसे संबंधों को मान्यता देने की बात हो या इनके बीच विवाह को मंजूरी देने का सवाल, हर हाल में भारतीय समाज में बड़े-बड़े बदलावों की आशंका है। समाज का ढांचा भी बदलेगा और लोगों की सोच में भी व्यापक बदलाव आएंगे। परिवारों का रूप-स्वरूप बदल जाएगा, तो संबंधों की संज्ञाएं और परिभाषाएं भी बदलेंगी।

सरकार सर्वोच्च न्यायालय को यह बताने की कोशिश कर रही है कि ऐसे विवाह को मंजूरी देने के लिए अनेक कानूनों में बदलाव करने पड़ेंगे। एक अनुमान है कि ऐसे 150 से ज्यादा कानून या कानूनी पहलू होंगे, जिन पर इस मंजूरी का प्रभाव पड़ेगा। एक कानून बदल देने भर से ऐसे विवाह की राह आसान नहीं हो जाएगी। कई तरह के सवाल उठ रहे हैं कि ऐसे जोड़े में पति कौन, पत्नी कौन कैसे तय होगा? पितृसत्तात्मक समाज का ढांचा भी शायद बदल जाएगा, क्योंकि जिन परिवारों में दो लड़कियों के बीच विवाह होगा, वहां पितृसत्ता का सवाल ही पैदा नहीं होगा। जो बच्चे होंगे या जो बच्चे गोद लिए जाएंगे, उनका पिता कौन होगा और माता कौन? भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने जिस विस्तार से इस बहस को शुरू किया है, इसकी गूंज देर तक सुनाई पड़ेगी। यह बात भी उठ रही है कि ऐसी बहस अमेरिका में भी नहीं हुई है। कई लोगों को यह लग सकता है कि यह बहस गैर-जरूरी है, पर जब समाज में इस मोर्चे पर पीड़ितों या गुहार लगाने वालों की संख्या बढ़ रही है, तब उन्हें नजरअंदाज भी नहीं किया जा सकता।

हालांकि, यह ध्यान रखने की बात है कि केंद्र सरकार का रुख इस मामले में दायर याचिकाओं के प्रतिकूल ही है। केंद्र सरकार का रुख यह है कि सुप्रीम कोर्ट पहले तय करे कि क्या यह मामला उसके विचार के योग्य है? फिर भी सर्वोच्च न्यायालय सुनवाई करके ही किसी नतीजे पर पहुंचना चाहता है। यह मामला केवल बहुसंख्यकों के धर्म से जुड़ा हुआ नहीं है। इस्लामिक धार्मिक संस्था जमीयत-उलेमा-ए-हिंद द्वारा भी इसी तरह के विचार व्यक्त किए गए हैं, जिसमें कहा गया है कि समलैंगिक विवाह जैसी धारणाएं पश्चिमी संस्कृति से पैदा होती हैं, जिसके पास कट्टरपंथी नास्तिक विश्व दृष्टि है और इसे भारत पर थोपा नहीं जाना चाहिए। राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग ने एक अध्ययन पर भरोसा करते हुए समलैंगिक जोड़ों को गोद लेने के अधिकार देने का विरोध किया है। बार काउंसिल ऑफ इंडिया की भी मर्जी है कि यह मामला केंद्र सरकार पर छोड़ दिया जाए। बीच बहस में सबसे जरूरी है कि संभलकर कदम बढ़ाए जाएं।

Date:28-04-23

बराबरी की भागीदारी से ही टिकती है कोई शादी

अर्चना दत्ता, (पूर्व महानिदेशक,दूरदर्शन और आकाशवाणी)

पिछले दिनों एक खबर आई, जिसमें बताया गया कि अफ्रीकी देश मॉरिटानिया का समाज किस तरह से महिला के तलाक का जश्न मनाता है, कैसे उसका परिवार उसकी वापसी का स्वागत करता है और किस तरह वह एक नाकामयाब रिश्ते के कलंक से मुक्त नए जीवन की शुरुआत करती है। पूरे उत्तरी अफ्रीका और पश्चिम एशिया में यह चलन आम है। यहां महिलाओं की सुंदरता और चयन का अधिकार अमूमन बहु-विवाह के कारण बनते है। इस तरह की सोच दरअसल परिवार और विवाह से जुड़े विचारों में बदलाव का संकेत है, क्योंकि तलाक को लंबे समय से पितृसत्तात्मक व्यवस्था के लिए चुनौती माना जाता रहा है।

दुनिया के कई समाज अब भी इसी विश्वास में जीते हैं कि 'शादियां स्वर्ग में तय होती हैं'। यह ऐसा पवित्र बंधन है, जिससे वर और वधू ही नहीं बंधते, बल्कि उनके परिवार भी जुड़ते हैं। इसे तोड़ना गलत है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। 2018 में 1.6 लाख परिवारों पर किए गए एक सर्वेक्षण से पता चला कि 93 फीसदी भारतीयों की शादी उनके माता-पिता ने तय की थी, जबकि ऐसी शादी का वैश्विक औसत करीब 55 फीसदी था। भारत में तलाक की सालाना दर भी कम थी। यहां हर 1,000 शादियों में 13 विवाह ही टूटते हैं, और यह भी अमूमन पुरुषों द्वारा किया जाता है, क्योंकि समाज महिलाओं को इस अधिकार के इस्तेमाल से रोकता है। चूंकि कार्यबल में औरतों की कम भागीदारी है, जिस कारण वे आर्थिक मामलों में पुरुषों पर निर्भर रहती हैं, इसलिए उन्हें नाकामयाब विवाह को निभाने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

वैवाहिक वेबसाइटों से मिले आंकडे बताते हैं, विवाह के बाजार में भी महिलाओं के प्रति भेदभाव किया जाता है, और जो महिलाएं कामकाजी हैं, उन्हें पुरुषों द्वारा उन लड़कियों की तुलना में करीब 15 फीसद कम प्रतिक्रियाएं मिलती हैं, जो काम नहीं कर रही हैं। फिर भी, विवाह पैटर्न पर संयुक्त राष्ट्र की वैश्विक रिपोर्ट कहती है कि तलाक पाने या संबंध तोड़ने वाले वयस्कों (35-39 वर्ष के आयु-वर्ग में) का अनुपात दोगुना हुआ है। यह 1970 के दशक में दो फीसदी था, जो 2000 के दशक में बढ़कर चार फीसदी हो गया। हालांकि, 1995 से 2017 तक के ओईसीडी फैमिली डाटाबेस ने मिश्रित प्रवृत्ति का संकेत दिया है, क्योंकि उसके मुताबिक, 18 देशों में तलाक के मामले बढ़े हैं, तो 12 में कम हुए हैं।

क्या रिश्तों की यह टूटन महिलाओं और पुरुषों को अलग-अलग प्रभावित करती है? लॉन्गिट्यूडनल रिसर्च प्रोजेक्ट (1984-2015) ने आर्थिक, घरेलू, स्वास्थ्य, सामाजिक और जीवन के अन्य पहलुओं पर तलाक के असर का मूल्यांकन करने के लिए 18,030 विवाहित और 1,220 तलाकशुदा व्यक्तियों पर शोध किया। यह अध्ययन बताता है कि महिलाएं ही अमूमन तलाक के तनाव से जूझती हैं, क्योंकि उनके लिए परिवार की आमदनी घट जाती है, घर का मालिकाना हक खोने का खतरा बढ़ जाता है और दोबारा वैवाहिक जीवन जीने की संभावना भी कम होती है। इतना ही नहीं, एकल अभिभावक की जिम्मेदारी उन पर कहीं ज्यादा होती है, जबकि पुरुष ऐसे प्रभावों से क्षणिक जूझते हैं। स्पष्ट है, तलाक महिलाओं को कहीं ज्यादा प्रभावित करता है। हालांकि, जर्मनी जैसे कुछ देशों में औरतों को कुछ आर्थिक मदद दी जाती

है, और अध्ययन यह भी बताते हैं कि तलाक के बाद पुरुषों का स्वास्थ्य तेजी से गिरता है और उनमें मौत की आशंका बढ़ जाती है।

यही कारण है कि यूएनवुमेन ने दुनिया के सभी देशों से परिवार-अनुकूल नीतियां लागू करने का आग्रह किया है। मॉरिटानिया में ही तलाक के बढ़ते मामलों के कारण ऐसे अभियान चलाए गए, जिनमें पारिवारिक सद्भाव व बच्चों के विकास पर जोर दिया गया। जाहिर है, परिवारों की भलाई के लिए विवाह संस्था को मजबूत बनाना पड़ेगा। इसके लिए, हमें विवाह के बुनियादी मूल्य, यानी समान भागीदारी पर जोर देना होगा, जिसके लिए कार्य-नीतियों और शिक्षा प्रणाली में सुधार आवश्यक है। साथ ही, हमें जीवन के हर क्षेत्र में भाग लेने के लिए महिलाओं के अधिकार का समर्थन करना होगा। इसके अनुरूप लक्ष्य बनाना ही कारगर साबित होगा।